International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 324-330

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 324-330
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-11-2020
Accepted: 23-12-2020

सुनिता सेंगाडा
सहायक आचार्य (संस्कृत)
स्व. श्री भीखाभाई भील राजकीय महाविद्यालय, सागवाड़ा
जिला डूंगरपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
सुनिता सेंगाडा
सहायक आचार्य (संस्कृत)
स्व. श्री भीखाभाई भील राजकीय महाविद्यालय, सागवाड़ा
जिला डूंगरपुर, राजस्थान, भारत

महाभारतकालीन सशक्तनारी – कुन्ती
(महर्षि वेदव्यासरचित महाभारत पर आधारित)

सुनिता सेंगाडा

सारांश :–
इस प्रकार महाभारत में वर्णित देवी कुन्ती के चरित्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एक विधवा नारी भी अपने शील, सदाचार, बुद्धिमता, धैर्यता, प्रेम एवं दृढता, द्वारा समाज में सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर सकती हैं। आवश्यकता हैं तो मात्र अपनी आन्तरिक शक्तियों, सामर्थ्य एवं क्षमताओं को पहचानने की।

कूट शब्द :– महाभारत, पुरुषप्रधान, कुन्तराजकुमारी, वशीकरण मन्त्र, स्वयंवर, शापित, पतिव्रता पाण्डव, आश्रय, लाक्षागृह, सामदामदण्डभेदनीति, द्रौपदी, क्षत्राणी, स्वाभिमानी, जिज्ञासु, कूटनीतिज्ञा वात्सल्यप्रेम, सेवाभावी।

प्रस्तावना
पञ्चम वेद तथा विश्वकोष नाम से प्रसिद्ध महाभारत महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित महाकाव्य हैं। संस्कृत साहित्य के मूलाधार ग्रन्थों में परिगणित ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में सर्वाधिक दीर्घकलेवरात्मक कृति हैं। जिसमें महर्षि वेदव्यास ने 18 पर्वों में अधर्म के नाशपूर्वक धर्म की विजय स्थापित की हैं। इसमें तत्कालीन साहित्यिक–सांस्कृतिक–सामाजिक आर्थिक – धार्मिक तथा राजनैतीक विषयों का समावेश हैं।

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेरहास्ति न तत् क्वचित।। [1]

अतिवृहत्काय महाकाव्य महाभारत में पात्रों की संख्या भी तदनुरूप अधिक हैं। मुख्य कथा के सभी पात्र नितान्त मानव है। योगिराज श्री कृष्ण के अतिरिक्त अन्य पात्रों में समान्य मनुष्य के सभी सुख–दुख, राग–द्वेष, घृणा, दम्भ, कपट, चञ्चलता, सहनशीलता, साहस, करूणा, विवेक आदि सहजतया प्रस्फुटित हैं। तत्कालीन पुरूषप्रधान समाज में भी अनेकों स्त्रीपात्रों ने अपने अद्वितीय व्यक्तित्व द्वारा पाठकमन में गहरी पैठ बनाई हैं। माता सत्यवती, राजकुमारी अम्बा, माता कुन्ती, माता गान्धारी, द्रुपदपुत्री द्रौपदी अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं से नारियों हेतु पथप्रदर्शिका मानी जा सकती हैं।
पितृसत्तात्मक समाज में एक विधवा नारी की दशा सदैव दयनीय मानी जाती रही हैं। उसें अबला, बेचारी, असहाय अभागिनी शब्दों से सम्बोधित कर संरक्षण बनाम उसका शोषण भी दृष्टि गोचर होता हैं। किन्तु महाभारत में चित्रित राजा पाण्डु की विधवा पत्नी देवी कुन्ती अपने सशक्त चरित्र द्वारा न केवल पितृविहीन पॉच–पॉच पुत्रों का पालन–पोषण करती हैं। अपितु विभिन्न प्रतिकूल परिस्थियों का दृढतापूर्वक सामना कर उन्हे पैतृक राज्य में स्थापित भी करती हैं।
इस शोधपत्र में देवी कुन्ती की उन कतिपय चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया हैं। जो उसे समाज में आदर्श एवं पथप्रदर्शक रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

कुन्ती :– देवी कुन्ती का महाभारत में सर्वप्रथम उल्लेख आदि पर्व (सम्भव पर्व) में हुआ हैं। यह यदुवंशियों में श्रेष्ठ शूरसेन की पुत्री एवं वसुदेवजी की भगिनी थी। सत्यवादी शूरसेन ने प्रतिज्ञानुसार अपनी पहली सन्तान अपने फुफेरे भाई संतानहीन कुन्तिभोज को भेट कर दी –

पितृष्वस्रीयाय स तामनपत्याय भारत।
अग्रयमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यं स सत्यवाक्।। [2]
अग्रजामथ तां कन्यां शूरोडनुग्रहकाङ्क्षिणे।

प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ।। [3]

तदन्तर वह कुन्त देश की राजकुमारी कुन्ती पृथा नाम से भी प्रसिद्ध हुई। राजकुमारी कुन्ती धर्मप्रिया थी। वह सदैव देवपूजन एवं अतिथि सत्कार में संलग्न रहती थी। वह उत्तम गुणों से युक्त महान व्रतों का पालन करने वाली थी। अपनी सेवाभावना से कुन्ती ने उग्र स्वभाव एवं कठोर ह्रदयी महर्षि दुर्वासा को भी संतुष्ट कर लिया–

सत्वरूपगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता।
दुहिता कुन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना।। [4]
सा नियुक्ता पितुर्गेहे देवताऽतिथिपूजने।
उग्र पर्यचरत् तत्र ब्राम्हण संशितव्रतम्।। [5]
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः।
तमुग्रं संशितात्मनं सर्वयत्नैरतोशयत्।। [6]

अतिथि सत्कार में संलग्न कुन्ती ने अपने पितृ गृह (कुमारी अवस्था) मे अपनी सेवाभावना से महर्षि दुर्वासा को संतुष्ट कर लिया। कुन्ती के जीवन मे आने वाले भावी संकट का विचार कर उसे महर्षि ने वशीकरण मन्त्र प्रदान किया। उस मन्त्र द्वारा जिस–2 देवता का आवहन किया जायेगा उस–उस देवता के अनुगृह से उसे पुत्र की प्राप्ति होगी –

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया।
अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवीच्चौव तां मुनिः।। [7]
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि।
तस्य तस्य प्रसादेन पुत्रस्तव भविष्यति।। [8]

इसी मन्त्र द्वारा कुन्ती ने विभिन्न देवताओं का आवाहन कर कर्ण तथा अन्य पॉच पुत्रों की प्राप्ति की।
यथा समय कुन्तिभोज ने राजकुमारी पृथा हेतु स्वयंवर आयोजित किया। जिसमें राजकुमारी पृथा ने श्रेष्ठ कुरूवंशी राजा पाण्डु को पति रूप में वरण किया–

ततः सा कुन्तिभोजेन राजाऽऽहूय नराधिपान्।
पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम।। [9]
पाण्डुं नरवरं रंगे ह्रदयेनाकुलाभवत्।
ततः कामपरीतांगी सकृत् प्रचलमानसा।। [10]
व्रीडमानाः स्रजं कुन्ती राजः स्कन्धे समासजत्।
तं निशम्य वृतं पाण्डुं कुन्त्या सर्वे नराधिपाः।। [11]

कुन्ती पतिव्रता नारी थी। वनवासी पाण्डु जब मैथुन में आसक्त, मृगरूपधारी किंदम मुनि का वध करते हैं। तो मुनि राजा पाण्डु को स्त्रीसमागम पर मृत्यु होने का श्राप दे देते हैं।

मृगरूधरं हत्वा मामेवं काममोहितम्।
अस्य तु त्वं फलं मूढ प्राप्स्यसीदृशमेव हि।। [12]
प्रियया सह संवासं प्राप्य कामविमोहितः।
त्वमप्यस्यामवस्थायां प्रेतलोकं गमिष्यसिः।। [13]

शापित राजा पाण्डु संतानोत्पादन की शक्ति से रहित हो कर अत्यन्त दीन एवं शोचनीय हो जाते हैं। दुःखी पाण्डु कुन्ती एवं माद्री से हस्तिनापुर लौट जाने को कहते हैं। तथा स्वंय सन्यास लेना चाहते हैं। किन्तु कुन्ती उन्हे सात्वना देते हुए वानप्रस्थाश्रम मे पत्नियों के साथ तप करने हेतु प्रेरित करती हैं। पतित्याग से स्पष्ट मना करते हुए पति द्वारा त्यागे जाने पर स्व प्राण त्यागने की बात कहती हैं–

नाह सुकृपणे मार्गे स्ववीर्य क्षयशोचिते।
स्वधर्मात् सततापेते चरेयं वीर्यवर्जितः।। [14]
अन्येऽपि ह्याश्रमाः सन्ति ये शक्या भरतर्षभ।
आवाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह तप्तुं तपो महत्।। [15]
प्रणिधायेन्द्रियग्रामं भर्तुलोकपरायणे।
त्यक्तकामसुखे ह्यावां तप्स्यावो विपुलं तपः।। [16]
यदि चावां महाप्राज्ञ त्यक्ष्यसि त्वं विशाम्पते।
अधैवावावां प्रहास्यावो जीवितं नात्र संशयः।। [17]

सन्तानोत्पादन की शक्ति से रहित सन्तानहीन राजा पाण्डु अत्यन्त ही दीन–हीन कातर हो जाते हैं। तब पतिपरायणा कुन्ती उन्हे अनेकों प्रकार से सांत्वना देती हैं। राजा पाण्डु अपनी असमर्थता बतलाते हुए, कुन्ती को सन्तानोत्पादन हेतु अन्य पुरूष से समागम का निवेदन करते हैं। किन्तु कुन्ती पाण्डु के प्रति अनुराग प्रकट करते हुए अन्य पुरुष से समागम से स्पष्ट मना कर देती हैं। देवी कुन्ती धर्मज्ञ एवं पतिपरायणा होने के साथ – साथ एक विदुषी नारी थी। जो आपत्ति काल मे पति को धैर्य बंधाती हैं। राजा पाण्डु मृगरूपधारी मुनि को मारने से पश्चाताप की अग्नि मे जल उठते है। अत्यधिक संतप्त होते हुए दोनो पत्नियों का त्याग कर वे सन्यास लेना चाहते है –

तस्मात् प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात् स्वय।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्धयपत्यं यशस्विनि।। [18]
न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेंव कथंचन।
धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचने।। [19]
त्वमेण तु महाबाहो मय्यपत्यानि भारत।
वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ।। [20]
स्वर्गं मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया ।
अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरूनन्दन ।। [21]
न ह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम्।
त्वत्तः प्रतिवशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः।। [22]

देवी कुन्ती अनेको पतिव्रता नारियों की पौराणिक कथा सुनाती हैं। किन्तु पुत्रप्राप्ति हेतु लालायित राजा पाण्डु पुनः–पुनः निवेदन करता हैं। तब कुन्ती अपनी कन्यावस्था में महर्षि दुर्वासा द्वारा प्राप्त वशीकरण मन्त्र का उल्लेख करती हैं तथा पति की आज्ञा से देवताओं का आहावन कर पुत्रों की प्राप्ति करती हैं –

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यासि ।
अकामो वा साकामो वा वशं ते समुपैष्यति ।। [23]
तस्य तस्य प्रसादात् ते राज्ञि पुत्रो भविष्यति ।
इत्युक्ताहं तदानेन पितृवेश्मनि भारत ।। [24]
अनुज्ञाता त्वया देवमाहवयेयमहं नृप।
तेन मन्त्रेण राजर्षे यथास्यान्नौ प्रजा हिता।। [25]

इस प्रकार देवी कुन्ती आपत्ति में भी धर्म विरूद्ध कार्य नही करती हैं। तथा पति की आज्ञा से ही आपद्र धर्म का पालन करते हुए सन्तान–सुख प्राप्त करवाती हैं। देवी कुन्ती पति की आज्ञा से धर्मराज से युधिष्ठिर, वायुदेव से भीम तथा देवराज इन्द्र से अर्जुन नामक पुत्र प्राप्त करती हैं। वह प्रत्येक कार्य पति की आज्ञा से कार्य करती हैं –

आवाह्यामि कं देवं ब्रूहि सत्यवतां वर।
त्वत्रोऽनुज्ञाप्रतीक्षां मां विद्धयस्मिन् कर्मणि स्थिताम्।। [26]

तीन पुत्रों की प्राप्ति के पश्चात् जब राजा पाण्डु पुनः कुन्ती को पुत्रप्राप्ति की आज्ञा देते हैं। तब देवी कुन्ती चतुर्थ सन्तान को शास्त्रविरूद्ध बतलाती हुई स्पष्ट रूप से मना कर देती हैं। आपत्तिकाल में नियोग विधि द्वारा तीन से अधिक चतुर्थ संतान होने पर स्त्री कुलटा कही जाती हैं –

नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत।
अतः परं स्वैरिणी स्याद् बन्धकी पञ्चमे भवेत्।। [27]
स त्वं विद्वन् धर्ममिममधिगम्य कथं नु माम्।
अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे।। [28]

इस प्रकार विदुषी नारी कुन्ती व्याकुल पति को सान्त्वना पूर्वक सन्तानसुख प्रदान करती हैं। तथा साथ ही अधर्माचरण से भी रोकती हैं।
काममोहित राजा पाण्डु की मृत्यु पर देवी कुन्ती शोकातुर होकर करूण विलाप करती हैं। वह अपने पुत्रों के पालन पोषण का उतरदायित्व माद्री को सौपकर मृत पति के साथ ही दग्ध होकर स्वर्गलोंक में उनका अनुसरण करना चाहती हैं।

अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफल मम।
अवश्यम्भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय।। [29]
अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम्।
उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमाम् पालय दारकान्।। [30]

देवी कुन्ती एक कुटनीतिज्ञा क्षत्राणी हैं। अतः समय एवं परिस्थितियों के अनुसार साम दाम दण्ड भेद नीति का पालन करना उसका स्वाभाविक गुण हैं। राजा पाण्डु एवं माद्री की असामयिक मृत्यु के पश्चात् वह अपने पॉचो पुत्रों सहित हस्तिनापुर लौट आती हैं। कुन्ती के साथ आए महर्षिगण राजा पाण्डु एंव माद्री की मृत्यु की सूचना देते हुए माता सहित युधिष्ठिर आदि को पांडु पुत्र घोषित कर पितामह भीष्म को सौप देते हैं।

इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वशः।
क्रियाभिरनुगृहयन्तां सह मात्रा परंतपाः।। [31]

इस प्रकार पति की मृत्यु के पश्चात् वह ऋषिगणों के माध्यम से अपने पुत्रों को पैतृक राज्य में स्थापित करती हैं। ऋषि गणों की अनुपस्थिति में पाण्डवों के जन्मादि विषय में धृतराष्ट्रादि का संशय बना रहता तथा देवी कुन्ती के चरित्र पर भी प्रश्न चिन्ह खडा हो सकता था।
हस्तिनापुर में आश्रित पितृरहित पाण्डवो कें प्रति दुर्योधन का व्यवहार सदैव अनुचित रहा। वह उन्हे अपना प्रतिद्वन्दी मानते हुए उन्हे पीडित करता रहता था। एकदा दुर्योधन भीमसेन के भोजन में कालकूट विष मिलाकर मूर्च्छित भीमसेन को लताओ के पाश से बॉधकर गंगा जी के जल में ढकेल देता हैं–

ततो दुर्योधनः पापस्तद्भश्ये कालकूटकम्।
विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया।। [32]
ततो बद्धवा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम् ।
मृतकल्पं तदा वीर स्थलाज्जलमपातयत्।। [33]

भीमसेन के चिरकाल तक न लौटने पर चिन्तित माता कुन्ती विदुर जी को बुलाकर दुर्योधन की दुर्भावना प्रकट करती हुई उसके वध की आशंका प्रकट करती हैं–

न च प्रीणयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः।
क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः।। [34]
निहन्यादपि तं वीर जातमन्युः सुयोधनः।
तेन मे व्याकुलं चितं हृदयं दहयतीव च।।[35]
मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरू।
प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत् तव।। [36]
एवमुक्त्वा ययौ विद्वान् विदुरः स्वं निवेषनम् ।
कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहासीना सुतैगृहे।। [37]

देवी कुन्ती दुर्योधन की दुर्भावना से भलीभॉति परिचित हैं। किन्तु पितृरहित अपने पुत्रों की बाल्यावस्था एवं स्वयं की आश्रितता से भी विवश हैं। अतः वह विदुर जी की सलाह पर उस समय नृपासनस्थ धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनादि से वैर करना उचित नही मानती हैं। अतः अन्य पुत्रों की रक्षा में सचेत होकर मौन रह जाती हैं। दुष्टात्मा दुर्योधन राज्य लोभ से पाण्डवों को मातासहित छलपूर्वक वारणावत नगर भेज देते हैं। जहां उनके लिए सुंदर जतुगृह का निर्माण कर उन सभी के वध की साजिश रची जाती हैं। किन्तु नीतिज्ञ विदुर इस षडयन्त्र को जानकर युधिष्ठिर को सांकेतिक भाषा में सचेत कर देते हैं। (म्लेच्छों की निरर्थक भाषा)

यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् ।
विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद यथा।। [38]

धर्मराज युधिष्ठिर उस संकेत को समझ लेते हैं। सभी के जाने पर जिज्ञासु माता कुन्ती युधिष्ठिर से इस सांकेतिक भाषा का मतंव्य पूछती हैं। जिससे रहस्य को जानकर सावचेत रह सके –

क्षता यदब्रवीद वाक्यं जनमध्ये ऽब्रुवन्निव ।
त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम्।। [39]
यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातु न च सदोषवत्।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं संवाद तव तस्य च।। [40]

देवी कुन्ती विषम परिस्थितियों से पूर्व परिचित होने से दिये गये संकेत को जानने हेतु उत्सुक हैं। भावी संकट से मन ही मन भयभीत कुन्ती पुत्रों सहित निशंकता प्रकट करती हुई जतुगृह में निवास करती हैं। शत्रुओं को प्रसन्न करते हुए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। तथा एक रात्रि देवी कुन्ती दान निमित्त ब्राम्हण भोज का आयोजन करती हैं। जिसमें एक भीलनी अपने पॉच पुत्रों के साथ भोजन करती हैं। मदिरापान से बेसुध भीलनी एवं उसके पुत्रों को जतुगृह में गहन निद्रा में त्यागकर पाण्डव जतुगृह में स्वयं आग लगा देते हैं। और माता सहित सुरंग द्वारा सुरक्षित बाहर निकल जाते हैं–

तांस्तु दृष्टवा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान्।
विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः।। [41]
अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राम्हणभोजनम्।
चके निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः।। [42]
निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन् भोज्ये यदृच्छया।
अनार्थिनी समभ्यागात् सपुत्रा कालचोदिता।। [43]
सा पीत्वा मदिंरा मत्ता सपुत्रा मदविह्वला ।
सह सर्वैः सुतै राजंस्तस्मिन्नेव निवेषने।। [44]

इस प्रकार देवी कुन्ती कूटनीति का आश्रय लेकर रात्रि में ब्राह्मण भोज आयोजित करती हैं। जिसमें भिलनी पुत्रों सहित सम्मिलित होती हैं। जिसे अत्यधिक मदिरा प्रदान कर बेसुध कर दिया जाता हैं। सभी के गहरी निद्रा में चले जाने पर उस जतुगृह में आग लगाकर पाण्डव माता कुन्ती सहित सुरक्षित बच निकलते हैं। यह सम्पूर्ण घटना पूर्वनियोजित थी। जिसमे देवी कुन्ती अपने पुत्रों की जीवन रक्षा हेतु भिलनी एवं उसके पुत्रो का बलिदान देने में भी नहीं हिचकती हैं। यह उसकी कुटनीतिज्ञता हैं।
जतुगृह से सुरक्षित बचकर पाण्डव श्री महर्षि वेदव्यास की आज्ञा से माता सहित एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर आश्रय प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण नगरी बकासुर नामक दैत्य से पीडित हैं। ब्राह्मण परिवार भी एक दिन दैत्य हेतु भोजन ले जाने के लिए नियत होता हैं। जिससे परिवार अत्यन्त दुःखी एवं भयभीत हैं।

ऐकैकश्चापि पुरूषस्तत् प्रयच्छति भोजनम् ।
स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः।। [45]

सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशन।
भोजनं पुरूषश्चैकः प्रदेयं वेतन मया।। [46]

आश्रयदाता ब्राह्मण परिवार के दुःख से दुःखी देवी कुन्ती अपने पुत्र भीमसेन के बल व पराक्रम पर विश्वास कर उसे दैत्य बकासुर के समीप भेजने का निश्चय करती हैं। तथा ब्राह्मण परिवार से कहती है कि मेरा पुत्र पराक्रमी एवं मन्त्रसिद्ध हैं। उसे कोई हानि नही होगी। साथ ही ब्राह्मण परिवार से इस कार्य को गुप्त रखने को भी कहती हं। कारण बताती है कि अन्य लोग मन्त्र सीखने के लोभ से कौतूहलवश मेरे पुत्रं को परेशान करेंगे और मेरा पुत्र गुरू की आज्ञा के बिना अपना मन्त्र किसी को नही सीखा सकता।

न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने।
वीर्यवान् मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम।। [47]
न त्विदं केषुचिद् ब्रह्मन् व्याहर्तव्य कथंचन।
विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान् विप्रकुर्युः कुतूहलात्।। [48]
गुरूणा चाननुज्ञातो ग्रहयेद् यत् सुतो मम।
न स कुर्यात् तथा कार्य विद्ययेती सतां मतम्।। [49]

इस प्रकार माता कुन्ती कूटनीति का आश्रय लेकर अपने पुत्र भीम द्वारा बकासुर वध करवाती हैं। जिससे वह आश्रय दाता के ऋण से मुक्त हो सके। साथ ही छलपूर्वक मन्त्रोल्लेख कर पुत्रों की पहचान भी गुप्त रखती हैं।
एकचक्रा नगरी में निवासरत माता कुन्ती के आश्रयदाता ब्राह्मण देवता के घर एक दिन कठोर तपस्वी कोई ब्राह्मण पधारे। किसी दिन बडी सुन्दर एवं कल्याणमयी कथाएँ कहते हुए अन्त में उन्होने पांचालदेश में यज्ञसेन कुमारी द्रौपदी के भावी अद्भुत स्वयंवर का उल्लेख किया। द्रौपदी के जन्म एवं अद्वितीय सौन्दर्य का भी वर्णन किया।

स तत्राकथयद् विप्रः कथान्ते जनमेजय।
पञ्चालेष्वदभुताकार याज्ञसेन्याः स्वयंवरम्।। [50]

ब्राह्मण मुख से सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर महाबली कुन्तीपुत्रों का मन विचलित हो गया। माता कुन्ती ने सभी पुत्रों को उस स्वयंवर की ओर आकृष्ट देखकर युधिष्ठिर से कहा कि हम इन महात्मा ब्राह्मण के घर बहुत दिनो से रह रहे हैं। अब हम सुखपूर्वक रमणीय पाञ्चाल देश चले। एक स्थान पर बहुत दिनों तक रहना अनुचित हैं –

ततः कुन्ती सुतान् दृष्टवा सर्वांस्तद्गतचेतसः।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी।। [51]
ते वयं साधु पाञ्चालान् गच्छाम यदि मन्यसे।
अपूर्वदर्शन वीर रमणीयं भविष्यति।। [52]
एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम।
ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे।। [53]

जब माता कुन्ती ने देखा कि द्रौपदी स्वयंवर को सुनकर सभी पुत्र उत्साहित एवं आकृष्ट हैं तो उन्होने उस स्वयंवर मे पुत्रो को उपस्थित करने हेतु ही पाञ्चाल देश चलने की इच्छा प्रकट की। वह भलीभांति जानती थी कि उसके युवा पुत्र किसी भी स्वयंवर की शर्तो को पूर्ण करने में सक्षम हैं। यदि पाञ्चाल नरेश से विवाह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो उन्हे न केवल आश्रय प्राप्त होगा अपितु द्रुपद जैसे पराक्रमी, तेजस्वी राजा का सहयोग भी प्राप्त होगा। जो उनकी शक्तिवर्धन करेगा। चूँकि दीर्घकाल तक दुर्योधनादि से छिपा रहना असम्भव है।
देवी कुन्ती स्वाभिमानी क्षत्राणी थी। वह सम्मान पूर्वक जीवन यापन में श्रद्धा रखती थी। जब पाण्डव धूतक्रीडा में अपना सर्वस्व हारकर वन में जाते हैं। तब माता कुन्ती विलाप करते हुए अपने भाग्य को दोष देती हैं। माता कुन्ती रोती – बिलखती द्रौपदी के पीछे–पीछे जाती हैं। अपने पुत्रों पर आई भारी विपत्ति को देखकर वह अत्यन्त विलाप करती हैं। वात्सल्य प्रेम से भरकर उन्हे धर्म एवं सदाचार पालन का उपदेश देती हैं। माता कुन्ती भी उनके साथ वनगमन की इच्छा प्रकट करती है –

तदवस्थान् सुतान् सर्वानुपसृत्यातिवत्सला।
स्वजमानावदच्छोकात् तत्रद् विलपती बहु।। [54]
कथं सद्धर्मचारित्रान् वृत्रस्थितिविभूषितान्।
अक्षुद्रान् दृढभक्तांश्च दैवतेज्यापरान् सदा।। [55]
पुत्रका न विहास्ये वः कृचछ्रालब्धान् प्रियान् सतः।
साहं यास्यामि हि वनं हा कृष्णे किं जहासि माम्।। [56]

इस प्रकार माता वात्सल्य प्रेम से पीडित होती हुई जीवन के प्रति अपनी आसक्ति को धिक्कारती हैं। अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई पुत्रों के साथ वन मे जाना चाहती हैं। किन्तु विदुर जी उसे सान्त्वना देकर अपने घर में आश्रय देते हैं।
पाण्डवों के बारह वर्ष के वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास की समाप्ति पर जब श्री कृष्ण शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर आते हैं तो वह अपनी बुआ कुन्ती से मिलते हैं। श्री कृष्ण को देख कुन्ती उनके गले लगकर अपने पुत्रों को यादकर फूट फूटकर रोने लगती हैं। अपने पुत्रों पाण्डवों के श्रेष्ठगुणों को तथा बाल्यकाल से प्राप्त अनेकों कष्टों को स्मरण कर दुःखी हो विलाप करती हैं –

सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसनादित्यवर्चसम्।
कण्ठे गृहीत्वा प्राकोशत् स्मरन्ती तनयान् पृथा।। [57]
ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रदगजाकुले।
बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः।। [58]

वह पाण्डवों की पूर्वावस्था एवं वर्तमान दीनावस्था का विचार कर शोकमग्न हो जाती हैं। वह अपनी पुत्रवधू द्रौपदी के अपमान से भी क्रोधित हैं। अपने पिता द्वारा कुन्तिभोज को देने एवं श्वशुरो द्वारा वञ्चनापूर्ण बर्ताव से अत्यन्त आहत होती हैं–

तन्मां दहति यत् कृष्णा सभायां कुरूसंनिधौ।
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा।। [59]
साहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परेतप।
अत्यन्तदुःखिता कृष्ण कि जीवितफलं मम।। [60]

वह अपने पुत्रों को स्वाभिमान रक्षा हेतु क्षत्रिय धर्म का स्मरण कराती हैं। उन्हे युद्ध हेतु प्रेरित करते हुए कहती हैं कि तुम प्राणों की बाजी लगाकर भी पराक्रम से प्राप्त किये हुए भोंगो को ही ग्रहण करना। तुम सम्मानित पुरूष हो अतः सम्मान पूर्वक जीवन यापन करो। वह पाण्डवों को युद्ध हेतु प्रेरित करती हैं–

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि।। [61]

कौरवो – पाण्डवों के मध्य शान्ति स्थापना में विफल रहे श्री कृष्ण को देवी कुन्ती पुनः अपना सन्देश देती हैं कि हे पुत्र युधिष्ठिर तुम्हारी यह शान्तिबुद्धि क्षत्रिय के विरूद्ध हैं। तुम उत्तम कुल में उत्पन्न और विद्वान होकर भी इस समय भिक्षावृति का सहारा ले रहे हो जो अनुचित हैं। क्षत्रियधर्म का पालन कर अपने बाहुबल से जीविका चलाओ। दूसरो पर आश्रित रहने वाली मुझ अपनी माता का तुम उद्धार करो। राजधर्म का पालन कर युद्ध में अपने शत्रुओं को पीडित करो। कायरता पूर्ण कार्यो से अपने पूर्वजों का नाम कलंकित मत करो –

राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान्।
नैतद राजर्षिवृत्तं हि यत्र तवं स्थातुमिच्छसि।। [62]
भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिनैरवोपपद्यते।

क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता।। [63]
इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा।
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन।। [64]
युद्धयस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पिताहान्।
मा गमः क्षीणपुयस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम्।। [65]

देवी कुन्ती पुरातन इतिहास में वर्णित विदुला तथा पुत्र संजय के संवाद का उदाहरण देकर अपने सभी पुत्रों को युद्ध हेतु प्रेरित करती हैं। पूर्व घटित सभी अपमानजनक घटनाओं का पुनः स्मरण करवाती हुई अपने पुत्रो को प्रतिशोध हेतु उत्साहित करती हैं। उन्हे द्रौपदी के बताये मार्ग पर चलने को कहती हैं–

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरूषर्षभाः।। [66]
माद्रीपुत्रौ च वक्तयौ क्षत्रधर्मरतावुभौ।
विक्रमेणार्जितान भोगान् वृणीतं जीवितादपि।। [67]
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम।। [68]

इस प्रकार माता कुन्ती पुत्रों के अपमान से आहत होकर उन्हे सदैव क्षत्रियधर्मानुसार प्रतिशोध लेने हेतु प्रेरित करती रहती हैं। वह शान्तिप्रधान धर्मराज युधिष्ठिर को भिक्षावृति त्याग कर राजधर्म पालन हेतु उत्साहित करती हैं।
जब श्री कृष्ण कौरवों एवं पाण्डवों के मध्य संधि (शान्ति) स्थापित करने में असफल हो जाते हैं। तब पितामह भीष्म एवं द्रोणाचार्य पुनः दुर्योधन को समझाते हैं। किन्तु वे भी सफल नही होते। विदुर की बात सुनकर युद्ध के भावी दुष्परिणाम से व्यथित देवी कुन्ती बहुत सोच विचार कर कर्ण के समक्ष उपस्थित होती है –

मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान्।
महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांनश्च विशेषतः।। [69]
कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति सम्प्रति।
आंशसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति।। [70]

देवी कुन्ती कर्ण को अपना पुत्र घोषित करने का निर्णय लेती हैं। जिससे वह पाण्डवों का अहित न करे। इस कर्तव्य का निश्चय कर वह गंगा तट पर जप करते हुए कर्ण के समक्ष उपस्थित होती हैं। जब महाबली कर्ण स्वयं को राधापुत्र बतलाते हुए कुन्ती को प्रणाम करते तो कुन्ती उसे कहती है कि तुम राधापुत्र नही, कुन्तीपुत्र हो। मेरी कन्यावस्था में मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए प्रथम पुत्र हो। अतः पाण्डव तुम्हारे अनुज हैं–

योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः।
कस्मान्न कुर्याद् वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ।। [71]
कानीनस्त्व मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः।
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक।। [72]
कर्ण शोभिष्यसे नूनं पंचभिभ्रतृभिर्वृतः।
देवैः परिवृतो ब्रम्हा वेध्यामिव् महाध्वरे।। [73]

पूर्व में कुन्ती द्वारा उपेक्षित कर्ण क्रोधित हैं किन्तु चूँकि देवी कुन्ती स्वयं कर्ण के समीप उपस्थित हुई थी अतः वह मात्र अर्जुन से युद्ध का प्रण कर अन्य चार पाण्डवों की रक्षा का वचन देता हैं। देवी कुन्ती कर्ण से अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहने का वचन लेकर चली जाती हैं –

न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति।
वध्यान् विषह्यान् संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान्।। [74]
युधिष्ठिर च भीमं च यमौ चौवार्जुनादृते।
अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले।। [75]
त्वया चतुर्णा भ्रातृणामभयं शत्रुकर्शन ।
दत्तं तत् प्रतिजानीहि संगरप्रतिमोचनम्।। [76]

देवी कुन्ती ने जिस पुत्र कर्ण को बन्धु बान्धवो के भय से जन्म देते ही त्याग दिया। पूर्व में उपस्थित अपने पुत्र कर्ण को पहचान कर भी मौन रही। उसी पुत्र के समक्ष वह अपने अन्य पुत्रों की रक्षा हेतु स्व सम्बन्ध को स्वीकारती हैं। वह कर्ण को अपने अनुजों पांडवो के पक्ष मे मिलाना चाहती हैं। कर्ण के बल पराक्रम से भयभीत देवी कुन्ती मातृस्नेह की अपेक्षा भय से ही उसे अपना पुत्र स्वीकार करती हैं। युद्ध के मुहाने पर इस रहस्य का उद्घाटन करना उसकी कुटनीतिज्ञता हैं। फलस्वरूप कर्ण उन्हे चार पुत्रों की रक्षा का वचन भी देते हैं। और इस प्रकार देवी कुन्ती कूटनीतिपूर्वक कर्ण पर भावनात्मक दबाव बनाकर अपने पुत्रों पाण्डवों की रक्षा का सफल प्रयत्न करती हैं।
देवी कुन्ती अत्यन्त ही सेवाभावी थी। कन्यावस्था में अपनी सेवाभावना से उग्र स्वभाव एवं कठोर हृदयी महर्षि दुवार्सा को भी सन्तुष्ट कर वरदान प्राप्त किया था। राजा पाण्डु के किंदम मुनि द्वारा शापित होने पर राजसुख का वैभव त्याग कर तपोवन में उनकी सेवा कार्य में संलग्न रही। धर्मयुद्ध में पाण्डवों के विजयी होने पर वह राजमाता पद पर सुशोभित हुई। जब अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोक से संतप्त एवं पाश्चाताप की अग्नि से पीडित होकर पत्नी गान्धारी सहित वनवास स्वीकार करते है। तब राजमाता कुन्ती भी सम्पूर्ण राजभोग त्यागकर अपने ज्येष्ठ सास–ससुर की चरणसेवा स्वीकार कर लेती हैं –

कुन्ती गान्धारीं बद्धनेत्रां व्रजन्तीं
स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती।
राजा गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य
पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः।। [77]
समाधेयास्त्वया राजंस्त्वय्यद्य कुलधूर्गता।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम्।। [78]

अपने पुत्रों पाण्डवों द्वारा पुनः–पुनः रोके जाने पर उन्हें सांत्वना देते हुए वनवास के निश्चय पर दृढ रहती हैं। वह पुत्र के राज्यभोग की अपेक्षा पुण्यमय पतिलोक को प्राप्त करना चाहती हैं। अतः वनवासी सास–ससुर की सेवा एवं तप द्वारा शरीर को सुखा देना चाहती है –

श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः।
तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरम् ।। [79]

तपस्विनी कुन्ती पुत्रहीन दम्पति धृतराष्ट एवं गान्धारी की पूर्ण मनोयोग से सेवा करती थी। उनकी पथ प्रदर्शक बन शिष्टाचार का पालन करते हुए शिष्या की भाति विनीत भाव से सेवा में तत्पर रहती थी –

सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः।
कषन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन् भूवि।। [80]
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत् प्रणतां स्थिताम्।
कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम्।। [81]

अनिन्दिता सती साध्वी देवी कुन्ती वन में गान्धारी के लिए नेत्र बनी हुई थी। वन की ऊँची नीची भूमि में वह उनको सहयोग प्रदान करती थी। वन में उत्पन्न दावानल में वह अपने ज्येष्ठों के साथ ही अग्नि में आहूत हो कर परम गति प्राप्त कर लेती हैं –

संजयो नृपतेर्नेता समेषु विशमेषु च।
गान्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता।। [82]
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत् तदा।
संजयस्तं तथा दृष्टवा प्रदक्षिणमथाकरोत्।। [83]

सन्निरूध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा।
गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव।। [84]
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव।
संजयस्तु महामात्रस्तस्माद् दावादमुच्यत।। [85]

इस प्रकार सेवाभावी देवी कुन्ती ने आजीवन कठोर तप एवं सेवाकार्य सम्पन्न किया। ऋषि–मुनियो की सेवा, पति सेवा एवं ज्येष्ठ सास ससुर की सेवा उसके सेवाभाव को स्पष्ट करते हैं। अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर जब राजभोग का अवसर प्राप्त होता हैं। तब देवी कुन्ती पुत्रशोक से विहल अपने ज्येष्ठ धृतराष्ट्र एवं गान्धारी की सेवा का निर्णय लेती हैं। राजा धृतराष्ट्र जो पुत्रप्रेम में अन्धे होकर पाण्डवों के प्रति द्वेषभाव पूर्वक अन्याय पूर्ण कार्यो में प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से सम्मिलित थे। उनके दुःख से दुखी हो देवी कुन्ती उनकी परिचर्या करती है तथा विनम्रता एवं गुरुजन सेवा द्वारा सिद्धि प्राप्त करती हैं। देवी कुन्ती अपनी चारित्रिक दृढ़ता, स्वाभिमान एवं बुद्धिमत्ता से अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों का धैर्य पूर्वक सामना करती हैं। समयानुसार विवेक बुद्धि से निर्णय लेते हुए सुखदुख युक्त भवसागर को पार कर सिद्धि प्राप्त करती हैं।

सन्दर्भ :– महर्षि वेदव्यास, महाभारत महाकाव्य

1. आदिपर्व – द्विषष्टितमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 53
2. आदिपर्व–सम्भवपर्व–दशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 2
3. वही, श्लोक संख्या 3
4. आदिपर्व–सम्भवपर्व–एकादशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 1
5. वही, श्लोक संख्या 4
6. वही, श्लोक संख्या 5
7. आदिपर्व–सम्भवपर्व–दशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 6
8. वही, श्लोक संख्या 7
9. आदिपर्व–सम्भवपर्व–एकादशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 3
10. वही, श्लोक संख्या 7
11. वही, श्लोक संख्या 8
12. आदिपर्व–सम्भवपर्व–सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 30
13. वही, श्लोक संख्या 31
14. आदिपर्व–सम्भवपर्व–अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 21
15. वही, श्लोक संख्या 27
16. वही, श्लोक संख्या 29
17. वही, श्लोक संख्या 30
18. आदिपर्व–सम्भवपर्व–एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 37
19. आदिपर्व–सम्भवपर्व–विंशत्यधिकशततमोंऽध्यायः, श्लोक संख्या 2
20. वही, श्लोक संख्या 3
21. वही, श्लोक संख्या 4
22. वही, श्लोक संख्या 5
23. आदिपर्व–सम्भवपर्व–एकविंशत्यधिकशततमोंऽध्यायः, श्लोक संख्या 13
24. वही, श्लोक संख्या 14
25. वही, श्लोक संख्या 15
26. वही, श्लोक संख्या 16
27. आदिपर्व–सम्भवपर्व–द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 77
28. वही, श्लोक संख्या 78
29. आदिपर्व–सम्भवपर्व–चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 23
30. वही, श्लोक संख्या 2
31. आदिपर्व–सम्भवपर्व–पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 32
32. आदिपर्व–सम्भवपर्व–सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक 45
33. वही, श्लोक संख्या 54
34. आदिपर्व–सम्भवपर्व–अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 15
35. वही, श्लोक संख्या संख्या 16
36. वही, श्लोक संख्या 17
37. वही, श्लोक संख्या 19
38. आदिपर्व–जतुगृहपर्व–चतुष्चत्वारिंशदधिकशततमाऽध्यायः, श्लोक संख्या 21(22–26)
39. वही, श्लोक संख्या 30
40. वही, श्लोक संख्या 31
41. आदिपर्व–जतुगृहपर्व–सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 1
42. वही, श्लोक संख्या 5
43. वही, श्लोक संख्या 7
44. वही, श्लोक संख्या 8 (4,6,8–13)
45. आदिपर्व–बकवधपर्व–एकोनषष्टयधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 7
46. वही, श्लोक संख्या 14 (1–17)
47. आदिपर्व–बकवधपर्व–षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 14
48. वही, श्लोक संख्या 17
49. वही, श्लोक संख्या 18
50. आदिपर्व–चैत्ररथपर्व–चतुषष्टयधिकशततमोध्यायः, श्लोक संख्या 7
51. आदिपर्व–चैत्ररथपर्व–सप्तषष्टयधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 2
52. वही, श्लोक संख्या 6
53. वही, श्लोक संख्या 8
54. सभापर्व–अनुद्यूतपर्व–एकोनाशीतितमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 12
55. वही, श्लोक संख्या 13
56. वही, श्लोक संख्या 21
57. उधोगपर्व–भगवद्यानपर्व–नवतितमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 2
58. वही, श्लोक संख्या 8
59. वही, श्लोक संख्या 57
60. वही, श्लोक संख्या 64
61. वही, श्लोक संख्या 78 (1–89)
62. उधोगपर्व–भगवद्यानपर्व–द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 21
63. वही, श्लोक संख्या 31
64. वही, श्लोक संख्या 33
65. वही, श्लोक संख्या 34 (5–34)
66. उधोगपर्व–भगवद्यानपर्व–सप्तत्रिंशदअधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 110
67. वही, श्लोक संख्या 14
68. वही, श्लोक संख्या 15 (1–24)
69. उद्योगपर्व–भगवद्यानपर्व–चतुष्चत्वारिशरदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 17
70. वही, श्लोक संख्या 18
71. उद्योगपर्व–भगवद्यानपर्व–चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 25,(26)
72. उद्योगपर्व–भगवद्यानपर्व–पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 3
73. वही, श्लोक संख्या 11
74. उद्योगपर्व–भगवद्यानपर्व–षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः, श्लोक संख्या 20
75. वही, श्लोक संख्या 21

76. वही, श्लोक संख्या 26
77. आश्रमवासिक पर्व–पंचदशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 9
78. आश्रमवासिक पर्व–षोडशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 16
79. आश्रमवासिक पर्व – सप्तदशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 20
80. आश्रमवासिक पर्व – चतुर्विंशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 12
81. आश्रमवासिक पर्व – सप्तविंशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 17,(16)
82. आश्रमवासिक पर्व–सप्तत्रिंशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 17
83. आश्रमवासिक पर्व–सप्तत्रिंशोऽध्यायः, श्लोक संख्या 29
84. वही, श्लोक संख्या 31
85. वही, श्लोक संख्या 32